भगवत् कृपा

स्वामी नारायण

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष–4, अंक–2–3
मंगलवार, 25 मार्च '80

सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी
मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे–श्री विमल दवे

वार्षिक चन्दा–25.00
प्रति अंक : 2.25

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

दादाखाचर की अनन्य भक्ति

जैसा कि आगे कहा जा चुका है ''गढडा'' महाराज का हृदय था और अपने जीवन के बहुमूल्य वर्ष उन्होंने गढडा में ही बिताये। इसकी पृष्ठभूमि में, जीवुबा, लाडूबा और दादाखाचर की पूर्णकाम समर्पित भक्ति मूल कारण थी। हम पिछले पृष्ठों में जीवुबा-लाडुबा की भक्ति की अपरिमेयता के बार में बहुत कुछ पढ़ चुके हैं। छोटेभाई दादाखाचर की भक्ति भी ऐसी ही थी, तनिक भी कम नहीं थी और दादाखाचर को भी महाराज का हर प्रकार का आश्रय प्राप्त था।

बचपन से ही दादाखाचर को महाराज के प्रति असाधारण अनन्य निष्ठायुक्त भक्ति थी। महाराज के शब्द अभी मुंह में ही रहते और दादा उसे आज्ञा मान कर तुरन्त पूरा कर लेते थे। उनसे संबंधित कई छोटे-छोटे प्रसंग हैं जिनमें दादाखाचर की समर्पित भक्ति की कहानी मिलती है और यह प्रत्येक सत्संगी के लिए प्रेरक है।

संतों की सेवा में अपना निवासस्थान समर्पित

उस समय की एक घटना इस प्रकार है—एक बार महाराज उन्मत्त गंगा (धेला नदी) में स्नान करके वापस आ रहे थे। उन्होंने देखा कि नदी के किनारे वृक्षों के नीचे अनेक साधु-संत, तीर्थवासी कष्ट में पड़े रहते थे। कृपावतार सहजानंदस्वामी इन साधुओं के कष्ट देखकर अत्यन्त विचलित हुए वे रोटी बनाने के लिए चूल्हे जलाते थे किन्तु उस आग पर बारिस होने लगती थी और चूल्हे ठंडे पड़ जाते थे। महाराज ने दादाखाचर से यह बात कही। असीम अनुकम्पा के कारण महाराज के नेत्र करुणाद्र हो उठे। यह देख कर दादाखाचर ने एक क्षण की भी देरी नहीं की और महाराज की इच्छा जान कर स्पष्ट रूप से कह दियाः

दादाखाचर– ''महाराज इस निवास स्थान में मेरा यह कमरा बहुत विशाल है, इसमें तीर्थवासी अपनी इच्छानुसार चूल्हे जला कर प्रेम से रोटी बनाएं।''

महाराज– ''यह तो ठीक है, मगर तुम कहां रहोगे?''

दादाखाचर– मैं इन साधुओं के साथ रहूंगा और घर से जीवुबा के साथ रहेंगे।

अपने रहने की जगह दे कर दादाखाचर ने

महाराज के संकल्प की सिद्धि की, जिससे महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आज्ञा ही कृपा

एक दूसरा प्रसंग इस प्रकार है। एक बार दादाखाचर जब किसी नाई के पास हजामत करवा रहे थे तब महाराज ने उन्हें आवाज दी–''दादा।''

अवाज़ सुनकर दादा ने नाई से कहा–''अभी हज़ामत रहने दे'' और..... वह पहुंच गये महाराज के पास !

महाराज–''दादा ! क्या कर रहे थे?''

दादाखाचर–''हजामत करा रहा था।''

महाराज–''हो गई हजामत?''

दादाखाचर–''नहीं महाराज ! अभी शेष है। आपकी आवाज सुन कर चला आया।''

महाराज ने सबको कहा–''वाह ! इन्हें हमारा कितना विश्वास है।''

महाराज के वचन से संत सेवा

एक और प्रसंग ! जाड़ों के दिन थे, ठंड बहुत थी। पू. शुकानंदस्वामी ठंड से ठिठुर रहे थे। महाराज ने देख लिया और दादाखाचर से कहा–''छप्पर पर की लकड़ियां कीलों से जुड़ी हुई हैं, ऐसा नहीं होता तो मैं ये लकड़ियां जला कर शुकानंद को गरमी देता। दादाखाचर ने लकड़ी के एक बड़े खंभेके टुकड़े करवाये और जला कर ले आये।''

महाराज– ''दादा, तूने यह किया?''

दादाखाचर–''साधुओं को ठंड लग रही है। आपने छप्पर की लकड़ियां काटने की जो बात करी थी, मैं समझ गया। अब ये आग आ गई है, चिन्ता की कोई बात नहीं।''

साधु तो आग में हाथ सेंकने लगे किन्तु उनको ठंड तो दादाखाचर की अप्रतिम भक्ति की उष्मा से ही हट गई थी।

एकनिष्ठ भक्त

एक और प्रसंग भी हृदय स्पर्शी है।

महाराज–दादाखाचर !

दादाखाचर–जी महाराज !

महाराज–तुम्हारी सम्पति बहनों को दे दो।

दादाखाचर–आज्ञा महाराज ! दे दी।

महाराज–अब तुम क्या करोगे? खाओगे कैसे?

दादाखाचर–भावनगर जाकर राज्य में नौकरी करूंगा।

महाराज–नहीं ! तुम्हें भावनगर नहीं जाना है। सम्पत्ति बहनों की हो गई, तुम उसकी रक्षा करो। तुम्हें वेतन मिलेगा।

दादाखाचर–जैसी आज्ञा महाराज !

अपनी ही सम्पत्ति, उनका दान और दान लेने वाले के यहां नौकरी ! किन्तु महाराज की आज्ञा थी। पूरे वर्ष दादाखाचर ने नौकरी की। महाराज तो इस आज्ञानिष्ठ भक्त की परीक्षा ले रहे थे। एक वर्ष के बाद परीक्षा पूरी हुई और महाराज ने उन बहनों से कहा–''तुम्हें सम्पत्ति की क्या आवश्यकता है, इसे दादा को वापस दे दो।'' बहनों ने भी कह दिया–''दे दी वापस महाराज।''

वास्तव में महाराज तो दादा की अनन्य निष्ठा की केवल परीक्षा ले रहे थे। दादा इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। यह देख कर महाराज भी प्रसन्न हो गए।

करुणाजल

एक बार तो इससे भी कड़ी परीक्षा ली गई। प्रत्यक्ष में ऐसा किया गया मानो महाराज स्वयं गढडा से ऊब गये हैं, चिढ़ गए है और फिर गढडा छोड़ कर चल पड़े। किसी ने दादाखाचर को कहा– ''महाराज कुछ रूठ कर जा रहे हैं, गढडा से अन्तिम विदा ले रहे हैं।'' शीघ्र ही दादाखाचर वहां पहुंच गये और महाराज के पांवों से लिपट गये। किन्तु महाराज पांव छुड़ा कर आगे बढ़े। तब दादा ने

कहा—''मुझे मेरे पिताजी ने आपके सुपुर्द किया है, रुक जाइये।'' किन्तु महाराज ने कुछ नहीं सुना। दादा को अलग करके वह बैल गाड़ी में बैठ गये और बैलगाड़ी चलाने का हुक्म दिया।

किन्तु दादा बैल गाड़ी के नीचे लेट गये। महाराज नीचे उतर आये और उनको वहां से उठा कर दूसरी ओर फेंक दिया। दादा को कुछ शारीरिक कष्ट भी हुआ, फिर भी वह उठे। खड़े-खड़े कांपने लगने, आंखें सजल हो गई। गंगा का निर्मल प्रवाह वहां मौजूद था ! कृपावतार महाराज ने यह देख लिया और उनका हृदय पिघल गया। परीक्षा पूर्ण हुई..... महाराज ने उन्हें अपने प्रगाढ़ आलिंगन में लिया। यह भगवान और भक्त के मिलन का देव-दुर्लभ दृश्य था।

लोकलाज और अनन्याश्रय

एक समय तो दादा के घर की लाज संकट में आ पड़ी थी। दादा से ईर्ष्या करने वाले जीवाखाचार ने भावनगर के महाराजा (गढडा भावनगर का आश्रित गांव था) विजयसिंह जी से शिकायत की—''दादाखाचर के घर में स्वामिनारायण इनकी बहनों के साथ रहते हैं, इससे हमारे परिवार की प्रतिष्ठा नष्ट हो रही है आप दादाखाचर को बुलाकर उन्हें उपालभ्य दें।'' जीवाखाचर का उद्देश्य यह था कि इससे दादाखाचर की प्रतिष्ठा गिरेगी। विजयसिंह महाराज यह नहीं जानते थे, इन्होंने जीवाखाचर की बात सच मानी। गढडा से दादाखाचर को बुलवाया और सभा के मध्य खड़ा कर के उन पर वज्रपात सा किया—''दादाखाचर तुमने अपनी बहनों को स्वामिनारायण को संभलाई है यह सच है?'' सारी सभा में सन्नाटा छा गया, किन्तु दादाखाचर निर्भीक रहे और स्पष्ट शब्दों में कहा—

''हां, महाराज! किसी काठी को सम्भालने के लिए दूं इससे तो अच्छा है कि स्वयं भगवान इनकी रखवाली करें।'' निर्भयता, स्पष्टता, शुद्धता और सत्यवादिता दादा के शब्दों में उभर रही थी। दादाखाचर ने आगे कहा—''मृत्यु के बाद लोग जिसके पास जाते हैं वे भगवान स्वयं हमें मिल गये हैं, इसे हम अपना सौभाग्य मानते हैं।''

सारी सभा और स्वयं महाराज विजयसिंह भी स्तब्ध हो गये। सच्चाई के सामने उन्होंने भी माथा टेक दिया। जीवाखाचर का मुंह छोटा-सा हो गया। ये तो हुई दादाखाचर की महाराज के प्रति अनन्य निष्ठा की और उस निष्ठा की कसौटी की कहानियाँ। किन्तु महाराज ने दादाखाचर को आश्रय भी ऐसा ही दिया है।

रसपान

गढडा के राधाबाग में एक सुन्दर बाड़ी है। एक समय वहां किसी आम वृक्ष के नीचे महाराज विराजमान थे। उस समय सच्चिदानंदस्वामी ने चार कच्चे आम काटे, इसके छोटे-छोटे टुकड़े और नमक डाल कर उनका खट्टापन दूर किया। कुछ मीठा और खट्टा रस डालकर स्वादिष्ट व्यंजन बनाया। महाराज ने मुंह में एक फांक डाली। उन्हें बहुत स्वाद आया। उन्होंने शीघ्र ही दादाखाचर को बुलाया और कहा—''यह मुरब्बा तुम्हारे खाने लायक है, खाओ।'' बाद में तो यह एक सुन्दर दृश्य हो गया। भक्त भगवान को खिलाते हैं और भगवान भक्त को। खाने से खिलाने में महाराज को अधिक स्वाद मिल रहा है। देखने वाले प्रसन्न हो गये।

कालजयी महाराज

एक बार दादाखाचर सख्त बीमार थे। महाराज ने अपनी खाट दादा की खाट के पास रखवाई। दादा की परिचर्या ठीक रूप से हो इसकी देखभाल स्वयं भगवान कर रहे थे। जीवाखाचर नित्य का वैरी था ही, किन्तु लोकलाज के भय से वह उन्हें देखने आया। परन्तु मुंह से कटु शब्द निकल पड़े—''अब

दादाखाचर नहीं बचेंगे।'' यह सुन कर परिवार के लोग विलाप करने लगे। तब महाराज एकदम उठ खड़े हुए और तलवार निकाल कर बोले—''इस तलवार की तेज धार से मैं काल को और दादा को दुःख देने वाले सब राजाओं को कुल सहित विनष्ट करूंगा।'' यह सुन कर जीवाखाचार भाग गया और महाराज ने परिवार जनों को धैर्य दिया। महाराज के आशीर्वाद से दादा का रोग नष्ट हो भी गया।

रुद्र महाराज

एक बार दादाखाचर किसी कार्यवश गढडा से बाहर थे। शत्रुओं ने सोचा कि गढडा पर आक्रमण करने का यह ठीक समय है। सूरबाई ने यह समाचार दिया—''महाराज, दादा तो गढडा में नहीं हैं और शत्रुओं की सेना आ रही है।'' महाराज ने कहा—''चिन्ता मत कीजिये, मैं तो यहां हूं। अकेला ही हजारों की सेना का नाश कर दूंगा।'' उन्होंने निवास स्थान पर जाकर कवच पहना, ढाल और तलवार हाथ में ली, रुद्र रूप धारण किया और बाहर आये। उनका यह रूप देख कर ही शत्रु भाग गये।

शरणागतवत्सल कृपावतार भगवान स्वामिनारायण ऐसे ही आश्रित की रक्षा हर समय करते हैं। ऐसे रोमहर्षक, रोचक और प्रेरक अनेक प्रसंग हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सच्चे भक्त और भगवान की प्रीति जल-मीनवत् है। जिस तरह पानी बिना मछली जी नहीं सकती, उसी तरह भगवान के बिना सच्चा भक्त भी नहीं जी सकता।

करुणा, संवेदना और जीव-शिव का मिलाप

वि.सं. 1886 ज्येष्ठ कृष्ण की दशमी-गंगा दशहरा के दिन भगवान ने गढडा में स्वेच्छा से स्वधामगमन किया.... दादा के हृदय पर वज्रपात हुआ। दादा की विरह वेदना असहय थी। आंखों से अश्रु धारा बह रही थी। अग्निसंस्कार के समय दादाखाचर अग्नि में पड़ने के लिए उद्युक्त हो गये। अत्यन्त कष्ट से संतों और हरिभक्तों ने उन्हे पकड़ रखा था। मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामी और योगमूर्ति गोपालानंदस्वामी ने धैर्य बंधाते हुए कहा—''जहां महाराज कथा करते थे वहां जाकर बैठो।'' वहां दादाखाचर ने क्या देखा? सभा जमी हुई है, महाराज उपदेशामृत दे रहे हैं ! जब दादा वहां गये तब महाराज ने कहा—''क्यों रोते हो? मैं इस लोक से कहीं नहीं गया हूं। मैं तो देखो, तुम्हारे सामने ही खड़ा हूं। शोक मत कीजिए।'' और महाराज ने अपने कण्ठ से गुलाब का हार निकाल कर दादा को पहनाया। यह चमत्कार नहीं है, भक्त की श्रद्धा के प्रति भगवान की अंजलि है।

ऐसे थे दादाखाचर, ऐसी थी उनकी भक्ति और भगवान की एकनिष्ठ उपासना और ऐसा था भगवान का आश्रय !

क्या आश्चर्य ? कैसा आश्चर्य ?

यह पुण्य पवित्रकारी भक्तराज की कथा। अब दादाखाचर का नाम वचनामृत के पन्नों पर स्थिर हो इसमें क्या आश्चर्य? स्वामिनारायण सम्प्रदाय के इतिहास में दादाखाचर का नाम स्वर्णाक्षरों में हो इसमें क्या आश्चर्य? भगवान सतत गढडा में रहे इसमें क्या आश्चर्य? गढडा भगवान का हृदय हो इसमें क्या आश्चर्य? गढडा स्वामिनारायण संप्रदाय में सबके लिए सनातन तीर्थधाम हो इसमें क्या आश्चर्य? स्वामिनारायण भगवान अपने अंग के नाम की गोपीनाथजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा दादाखाचर के निवास स्थान में करें और भगवान वही मूर्ति की स्वयं आराधना करें इसमें क्या आश्चर्य?

भक्त-भगवान की यह गाथा हमारे हृदयों में प्रगट हो और हम भगवान और उनके भक्तों की अनन्यभाव से—दादाखाचर के भाव से सेवा करें ऐसी प्रेरक है यह प्रेम कहानी।

बम्बई में स्वरूपानुभूति दिन समारोह.....

दि. 3 फरवरी 1980 के दिन प.पू. काकाजी का ''स्वरूपानुभूति दिन'' का महोत्सव बम्बई में भारतीय विद्या भवन के सभागार में भव्य समारोह करके मनाया गया। उस दिन सभागार में एक इंच भी स्थान रिक्त नही था। बम्बई की धर्मप्राण प्रजा की भीड़ जमा थी। साथ ही भिन्न-भिन्न स्थानों से सन्तों, सत्संगियों का स्वागत हुआ था। प.पू. काकाजी के अतिरिक्त प.पू. पप्पाजी, प.पू. स्वामिजी, पू. कान्तीकाका, पू. काठोरी स्वामी, पू. जशभाई साहेब, पू. पागे साहेब, पू. आर.डी. पटेल साहेब आदि मंच पर विद्यमान थे। अत्यन्त प्रभावक वातावरण का निर्माण हो गया था। उपर्युक्त मनीशियों ने और पू. गोरधनकाका, पू. हरिभाई, पू. सतुभई, पू. रमणिकभाई ने दिल खोलकर स्वरूपानुभूति का महात्म्य किया था और प.पू. काकाजी जीवन के अन्यान्य पहलू को उभर कर सभा समक्ष रखे थे, इतना ही नहीं उस मंगल दिन के अवसर पर प. पू. काकाजी के पास शुभाषियों की प्रार्थना की थी। इसी अंक में पत्रिका के एक सहसंपादक डॉ. महेन्द्रभाई दवे ने उस दिन जो निवेदन किया था कि इसका सारसंक्षेप पविर्तन-पिरवर्धन कर के दिया है जिससे हमारे पाठकों को उस दिन की कुछ झलक आ जायेगी। ऐसे समारोहों का उद्देश्य है कि हम इनके माध्यम से तत्त्व को पहचान सकें और ब्रह्मस्वरूपों की निश्रा में ब्रह्मरूप बन कर महाराज के कथनानुसार परब्रह्म की भक्ति कर के शाश्वत आनंद महोदधि में मग्न हो जायें।

×××

आज दिनांक 3-2-1980 के दिन, पू. काकाजी के साक्षात्कार दिन, यहाँ आने का अवसर पा कर मुझे अत्यधिक लाभ यह हुआ है कि जिनके केवल नाम ही मैंने सुने थे ऐसे प.पू. पप्पाजी और प.पू. कान्तिकाका आदि के दर्शन हुए।

काकाजी को क्यों चुना ?

आज प.पू. काका का स्वरूपानुभूति का दिन है। उस समय चिंतन करते हुए प्रथम यह प्रश्न हमारे समक्ष आता है कि गुरुहरि योगीजी महाराज ने इस प्रकार की अनुभूति करवाने के लिये काकाजी को ही क्यों चुना?

प.पू. काकाजी का समग्र जीवन देखते हुए, इसका अध्ययन करते हुए एक तथ्य उभर कर हमारे सामने यह आता है कि वह जन्म से निर्भीक रहे।

गीता में दैवी संपत्ति क्या है इसकी चर्चा करते हुए प्रथम संपत्ति को 'अभय' कहा गया हैः

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोत्रव्यवस्थितिः

(गीता—16-1)

मनुष्य की प्रथम संपत्ति इनका प्रथम गुण होना चाहिए—अभय। किसी का डर नहीं। काकाजी में स्वरूपानुभूति के पूर्व भी यह गुण विद्यमान था और आज भी है। बचपन में वह अभय थे, व्यापारी के रूप में भी वह अभय थे और अध्यात्मिक क्षेत्र में भी अभय रहे, अभय हैं। भय तो असत्य, लोभ और अनास्तिकता से जन्मलेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो 'अभय' है यह सत्यशील है, त्यागी है और आस्तिक है (अर्थात् परमात्मा के अस्तित्व में और उनके द्वारा चलाये गये नियम में श्रद्धा रखता है)। काकाजी के व्यावहारिक जीवन में दुर्घटनायें हुई हैं, जिस समय सामान्य व्यक्ति का दिल बैठ जाय। पर ऐसे समय (कोर्ट में केस चलता था तब, चुनाव आदि के समय) काकाजी की आंतरिक निर्भयता को बाहरी बनावों ने स्पर्श भी नहीं किया और ये प्रसंग स्वरूपानुभूति के पूर्व के थे।

योगीबापा की सूक्ष्म नजर ने देख लिया कि यह पात्र है। और इन्होंने काकाजी को दिव्य विरासत देने

के लिये चुना और स्वरूपानुभूति करवाई। हमारे कवि दयाराम का निम्न कथन सत्य है:

''शेरनी का दूध सोने के पात्र में ही रह सकता है।''

इसी प्रकार–

''जो प्रेम अंश है उनके ही हृदय में प्रेम रस स्थिर रहता है।''

शेरनी का दूध आप सोने के अतिरिक्त किसी अन्य धातु के पात्र में डालेंगे तो यह पात्र टूट जायगा। इसी प्रकार प्रेम की महती अनुभूति प्रेमी ही कर सकता है, अन्य नहीं।

स्वरूपानुभूति जैसी जीवन की सर्वोच्च अनुभूति के लिये पात्र सामान्य नहीं होना चाहिए। ऐसे पात्र को यदि अनुभूति करवाई भी जाय तब भी वह इसे सहन नहीं कर पायेंगे। जैसे अुर्जन (परमवीर, व्यवहार जीवन के सच्चे मनीषी) को श्री कृष्ण भगवान (स्वयं प्रगट ब्रह्म, व्यवहार के पार, काल के पार, परम ऋत के स्वामी) ने चुना था ठीक उसी तरह काकाजी (अभय, त्यागी, ब्रह्मनिष्ठायुक्त) को योगीजी (सदा प्रगट ब्रह्मस्वरूप) ने चुना।

आत्यंतिक करुणा

किन्तु काकाजी की सर्वजन के प्रति करुणा के कारण इनके मन में ऐसा हुआ कि–नहीं, यह अनुभूति मुझे अकेले को नहीं, मेरे अन्य आत्मीय स्वजन मित्र आदि सबको होनी चाहिए। अतः इन्होंने योगीजी को प्रार्थना भी की। इस संकल्प के पीछे काकाजी की समग्र मानव जाति के प्रति असीम करुणा थी। करुणावतार भगवान बुद्ध के बारे में कहा जाता है कि जब उनके समक्ष निर्वाण में प्रवेश करने का समय आया तब उन्होने यही कहा था कि प्रथमतः सारी मानवजाति निर्वाण में प्रवेश करें, मैं सबसे अन्त में प्रवेश करूंगा। इस उदाहरण के माध्यम से काकाजी की–उस समय की–मनः स्थिति हम सहज ही जान सकते हैं।

काकाजी का व्यवहार

आज प.पू काकाजी की स्वरूपानुभूति दिवस है, हमारा धन्यता दिन है क्योंकि उस दिन से आज तक काकाजी पात्रों की निर्मिति कर रहे हैं। इनकी प्रक्रिया भी अद्‌भुत है। 'अक्षर' और 'अक्षरपति' की अनुभूति करने वाला यह व्यक्ति गुरु होते हुए भी हमारी समक्ष गुरु के रूप में प्रस्तुत नहीं होते हैं। वे तो कहते हैं: ''मैं भगवान का पुत्र हूँ; आपका साथी हूँ'' इनका शासन है तो प्रेम का, इनका हमारा साथ सम्बन्ध है तो सहृदयी का।

प्रगट का परिचय

वे तो सहृदयी हैं, किन्तु क्या हमने इनको पहचाना? प्रश्न तो यहां है। ब्रह्म जब प्रकट रूप धारण करता है तब इनका व्यवहार तो सामान्य मानव की भाँति होता है। हमें वह ही दिखाई पड़ता है, हमें भीतर की पहचान हो जाय तो जैसा कि आगे कहा, काकाजी का स्वरूपानुभति दिन हमारा धन्यता दिन हो जायेगा। किन्तु प्रगट की पहचान कठिन है। अर्जुन को जब विश्वरूप दर्शन की अनुभूति नहीं थी तब तक श्रीकृष्ण उनके लिये क्या थे?

सखेति मत्त्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन बापि।।
यच्चा वहा सार्थमसत्कृतोऽसि
विहार शय्यासन भोजनेषु।
एकोऽथवा प्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।

(गीता–11, 41, 42)

–आपकी महिमा मैं जानता नहीं था अतः बचपन का मित्र मानकर मैं तो आपको–हे कृष्ण, हे यादव, हे दोस्त ऐसा ही कहता रहा। इसको प्रमाद कहो या अगाध मित्रता। जब हम साथ-साथ घूमने जाते थे, या सोते-बैठते थे, अकेले होते थे या समूह

में—मैंने मजाक भी की है क्योंकि मैं नहीं जानता था कि आप साक्षात् परमात्मा हो। भगवन् ! मुझे क्षमा कर दीजिए।

प्रकट पुरुषोत्तम स्वामिनारायण भगवान को इस रूप में पहचानने में कुछ एक को कष्ट हुआ। उन्होने बाद में पहचाना। महाराज ने स्वयं बार-बार गुणातीतानंदस्वामी के बारे में कहा कि यह मेरा 'अक्षरधाम' है। तब भी बहुत लोगों ने उन्हें नहीं पहचाना। पू. भगतजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप शास्त्री जी महाराज, गुरुहरि योगीजी महाराज के प्रति ब्रह्मनिष्ठा कुछ एक को नहीं थी। कोई कही रुक गया, कोई कहीं रुक गया। धर्मनिष्ठा होती है, किन्तु जब तक ब्रह्मनिष्ठा नहीं होती है तब तक ब्रह्मस्वरूप की पहचान नहीं होती है, जीवन की सार्थकता नहीं होती है। प्रभु सहजानंदस्वामी ने वचन दिया है, ''मैं युगान्त तक आपके साथ हूँ।'' इसे हम भूल गये हैं।

गुणातीत परम्परा

महाराज, स्वामी, भगतजी महाराज, जागास्वामी, अदाश्री, स्वामी शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज की परम्परा में आज हमारी समक्ष प्रकट स्वरूप के रूपों मैं है—पू. काकाजी, पू. पप्पाजी और पू. स्वामिजी। इनको पहचान लीजिए। नहीं पहचानोगे तो अर्जुन जैसी गलती कर बैठोगे। प्रकट की भक्ति कीजिए। हमारे जीवन में इसका अत्यन्त महत्त्व है। प्रकट को समझ कर, प्रकट में निष्ठा रख कर जो सुख हमें मिलेगा इसका वर्णन सम्भवित नहीं है। सीधा अक्षरधाम का मार्ग खुल जायेगा। इन प्रकट स्वरूपों अगर सच नहीं है तो महाराज के वचन सच नहीं है। मंदिर में खड़ी हुई मूर्तियाँ केवल प्रदर्शनी की चीजें हो जायेंगी। हमारा धर्माचरण स्वयं कृत्रिम बन जाएगा। आज स्वरूपानुभूति के दिन प्रकट की निष्ठा हमें दृढ़ करनी है। क्योंकि परब्रह्म के प्रति दृढ़निष्ठ हुए बिना कौन हमें ले जायेगा?

'श्रोत्रीय' और 'ब्रह्मनिष्ठ'

हमारे शास्त्रों में दो शब्द हैः एक 'श्रोत्रीय' और दूसरा 'ब्रह्मनिष्ठ'। गुरु किसको कहना चाहिए? शास्त्र कहते हैंः ''समित्पाणिः श्रोत्रीयम् ब्रह्मनिष्ठम।'' हाथ में समधि लेकर गुरु के पास जाना चाहिए और गुरु के दो लक्षण दिये गये हैं—'क्षोत्रीय' अर्थात् श्रुति जानने वाला अर्थात् विद्वान् और दूसरा ब्रह्मनिष्ठ। ब्रह्मनिष्ठ गुरु न हो तो कोरी विद्वत्ता खाली है। एक उदाहरण के माध्यम से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

ब्रह्मस्वरूप द्वारा ब्रह्मसिद्धि

ब्रिटिशों के युग के एक भारतीय राजा की यह कहानी है। राजा ने अपने कुमार को विद्याग्रहण के लिये उसकी पांच साल की आयु में इग्लैण्ड भेजा। वहां उस कुमार ने बीस साल तक शिक्षा-दीक्षा ली और यूनिवर्सिटी की उच्च उपाधियाँ प्राप्त की। इसके बाद जब यह कुमार भारत आया तो शीघ्र ही उसके पिताजी राजा साहब का देहावसान हो गया और कुमार जब राजा बन गया, तब नये राजा ने सोचा कि मैं तो भारतीय संस्कृति से तद्दन अनभिज्ञ हूं, मैं यहां राज्य कैसे चला पाऊँगा? नये राजा साहब ने यह प्रश्न दीवानजी से पूछाः दीवानजी खुश थे। उन्होने राजा साहब से कहाः

''आप 'श्रीमद्भागवत सुनें। इससे आपको यहाँ की सारी बातें समझ में आ जायेंगी।'' ''क्यों, भागवत की इतनी विशेषता है?'' ऐसा पूछे जाने पर दीवानजी ने सारी कहानी कहीः ''महाराजा परीक्षित को ऋषिपुत्र का शाप था कि इनकी मृत्यु आज से 7वें दिन होगी। परीक्षित ने सब कुछ छोड़ दिया। शुकदेवजी ने उनको भागवत की कथा कही, तब राजा का मोक्ष हो गया।'' राजा ने कहाः यह तो बहुत अच्छा है।'' बाद में राजा साहब ने अपने नगर के ब्राह्मण की नियुक्ति कर दी और कहा, ''आप मुझे नित्य भागवत की कथा सुनाया करें। मैं आपकी पूरी आर्थिक जिम्मेदारी अपने सर पर लेता

हूँ।'' कथा आरम्भ हुई। राजा साहब नित्य भागवत सुनते थे। कथा का एक पाठ पूरा हुआ। राजा ने ब्राह्मण से कहाः ''कृपया पुनरावर्तन कीजिए।'' ऐसे आवर्तन होते गए। राजा साहब ने देखा कि भागवत की कहानियाँ तो मुझे भी सब कंठाग्र हो गई; किन्तु मेरे भीतर किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। एक बार एक ब्रह्मनिष्ठ सन्यासी राजा के नगर में आये। राजा ने उनसे प्रश्न पूछाः ''मैंने भागवत की कथा अनेक बार सुनी किन्तु मुझमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं है।'' वही काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, विकार हैं। ऐसा क्यों?'' परीक्षित राजा ने तो एकबार ही कथा सुनी और उनका मोक्ष हो गया। मेरा क्यों नहीं हुआ?'' तब महात्मा ने कहाः ''आप मुझे अपने राज्य का शासन केवल आधे घंटे के लिए दें तो मैं इस बात का यथार्थ उत्तर दे पाऊँगा।'' राजा ने कहाः ''ठीक है, आप अभी बैठ जाइए सिंहासन पर। राजा उतर गया और महाराज जी बैठ गए शासन चलाने के लिए। तुरन्त महात्मा ने आज्ञा दीः ''शीघ्र जाकर बड़ी-बड़ी दो मजबूत रस्सियाँ ले आईए।'' रस्सियाँ आ गई तब महात्मा ने हुक्म दिया, ''एक रस्सी से कथा करने वाले ब्राह्मण को इस खम्भे के साथ बांध दो।'' ब्राह्मण को बाँध दिया। तब दूसरा हुक्म दिया, ''इस दूसरी रस्सी से राजा साहब को बाँध दो दूसरे खम्भे के साथ।'' राजा साहब बांध दिये गये। केवल दाहिने हाथ की उंगलियाँ खुली रख छोड़ी गई। महात्मा ने राजा को हुक्म दियाः ''तुम्हारे राज्य का विद्वान् ब्राह्मण रस्सी से कसा गया है, बन्धन में है। इसके बन्धन काट दीजिए। यह तुम्हारा कर्तव्य है।'' यह सुन राजा साहब ने कहा। ''ठीक है, किन्तु पहले मेरे बन्धन तो काटो। मैं स्वयं बन्धन में हूँ। मैं कैसे दूसरे के बन्धन काट सकता हूँ?'' यह सुन कर सन्यासी महाराज ने हुक्म दिया। ''दोनों के बन्धन काट दीजिए।'' आधा घण्टा हो गया था। अतः महात्मा सिंहासन पर से उतर गये, अपने दंड कमण्डलु लेकर चलने लगे तब राजा साहब ने कहा, ''महाराज ! मेरे प्रश्न का उत्तर?'' ''तेरे प्रश्न का उत्तर तूने ही दे दिया।'' ''कैसे?''

''तूने नहीं कहा? मैं स्वयं बन्धन में हूँ। मैं कैसे दूसरे के बन्धन काट सकता हूँ।'' यही तो उत्तर है।

भागवत की कथा करने वाले यह ब्राह्मण विद्वान् हैं किन्तु ब्रह्मनिष्ठ नहीं है। यह स्वयं काल, कर्म, माया के घेरे में घिरा हुआ है, यह तेरे बन्धन कैसे काट सकता है?'' शुकदेवजी परम ब्रह्मनिष्ठ थे अतः परीक्षित के बन्धन कट गये।

इस उदाहरण का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मनिष्ठ ही परब्रह्म के साथ हमारा सम्बन्ध जोड़ सकते हैं और तब काल, कर्म, माया के बन्धन टूटते हैं। अतः गुरु ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए और तब ही परब्रह्म के साथ शिष्य का नाता जोड़ सकते हैं। भगवान स्वामी नारायण ने 'अक्षर धाम' जाने से पूर्व अपने सम्प्रदाय में ब्रह्मस्वरूप संतों और जीवन मुक्तों की परम्परा रख छोड़ी है।

काकाजी का जीवन कार्य

आज प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. स्वामिश्री हमारी समक्ष वर्तमान में विद्यमान हैं। योगीजी महाराज ने स्वयं महाराज की प्रेरणा से कृतसंकल्प होकर 3 फरवरी 1952 को काकाजी को स्वरूपानुभूति करवा कर महाराज की दिव्य परम्परा के वाहक बनायें और परम्परा के पूर्व सूरियों ने मोक्षधाम की और संसार के प्राणियों को जिस प्रकार प्रवृत्त किया ठीक उसी प्रकार, उसी उद्देश्य से आज प.पू. काकाजी कार्य कर रहे हैं। अतः हम कह कहते है कि काका का स्वरूपानुभूति दिन जगत् मांत्रल्य की क्षण है और इसके लिए ही हम आज यह दिन मना रहे हैं

ब्रह्मप्राप्ति का मूलसाधन

परमात्मा सत् स्वरूप, चित् स्वरूप, आनन्द स्वरूप है। इस सच्चिदानंद धन स्वरूप घनश्याम महाराज है। इनको पहचानने के बाद, इनके अक्षर धाम प्रवेश करने के बाद न जन्म है, न मरण है, न शोक है, न दुःख है। हमारा चैतन्य एक नित्य आनंद में सदा के लिये स्थित हो जाता है। इस स्थिति को सब कोई चाहते हैं। मगर यह परमात्मा कैसे, क्या करने से प्राप्त हो सकता है यह हम नहीं जानते। परिणाम रूप इधर-उधर भटकते रहते हैं। व्रत, जप, तप, स्वाध्याय, योग, यज्ञ, दया, इन्द्रियदमन आदि बहोत अच्छा—किन्तु एक्सरसाईस है। शरीर, मन, प्राण पर इससे कन्ट्रोल अवश्य मिलता है। किन्तु परमानंद की प्राप्ति के ये साधन नहीं है। असली साध्य है ब्रह्मस्वरूप सन्त का समागम। पारस ही लोहे को सोना बना सकता है। यहाँ तो पारस द्वारा पारस बनाने की बात है। ब्रह्मस्वरूप द्वारा ही ब्रह्मस्वरूप बना जाता है। अतः हमारे शास्त्रों में 'संत समागम' की महिमा अधिक गायी गयी है। स्वामिनारायण सम्प्रदाय में तो यह ही एक साधन माना गया है। ऐसा साधन जीव के निकट सदा ही रह सके इसके लिये भगवान स्वामिनारायण ने ब्रह्मस्वरूप संतों की परम्परा का सर्जन किया है जो आज भी विद्यमान है और जब तक संसार है तब तक विद्यमान रहने वाली है। किन्तु हम अज्ञान के अंधेरे में है। प्रकट है इसकी पहचान नहीं है। यही स्थिति अर्जुन की थी। हम ऐसी गलती न करें। दादुकाका नाम तो केबल बाह्य संज्ञा है। उस संज्ञा को केवल न पकड़े रखें। उनके बाह्य व्यवहार को ही न देखें। यह आंख का धोखा है। आंख, कान, जीभ, चमड़ी, बुद्धि, मन, प्राण केवल बाह्य संसार को समझने के लिये है। असली ब्रह्मतत्त्व की परख के लिये साधन काम के नहीं है। उसके लिये तो अंतरचक्षु द्वारा ब्रह्मस्वरूप की परख, इसके बाद इसकी लगन, इसके बाद इसके प्रति अप्रतिम श्रद्धा, इसके बाद इसका अनुकरण—यह ही प्रक्रिया है।

संशयात्मा विनश्यति

भाईयों ! अब मन में संशय न रखो। अब पहचान लो, पहचानने के बाद समर्पण करें। फिर देखिए कि आप में क्या परिवर्तन आता है?

आज भी भगवान प्रत्यक्ष हैं

मुझे-कभी इच्छा होती थी—मैं कृष्ण के युग में होता तो ! स्वामिनारायण भगवान के समय में होता तो ! किन्तु शीघ्र ही ये विचार नष्ट होता है, क्योंकि भीतर का दिल करता है सहजानंदस्वामी यहां इसी समय है ही और मैं नया साधक नहीं रह जाता हूं क्योंकि मैं अनंत काल के मुक्त जो अभी भी विद्यमान है इनके साथ बैठ गया हूँ।

—डॉ. महेन्द्रभाई दवे

Statement about Ownership and other particulars about news paper
'भगवत-कृपा'– 'THE DIVINE GRACE'
(Form IV Rule 8)

1. Place of Publication	:	Yogi Divine Society A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
2. Periodicity of its Publication	:	Monthly
3. Printer's Name	:	Sadhu Mukund Jivandas
Nationality	:	Indian
Address	:	Yogi Divine Society A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
4. Publisher's Name Nationality Address	:	As above
5. Editor's Name Nationality Address	:	As above
6. Owner's Name Nationality Address	:	As above

I, Sadhu Mukundjivandas, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd/-
Sadhu Mukundjivandas
Signature of Publisher

Date: 25th March, 1980

LOVE GIFTS OF SWAMINARAYAN

This 25 March is the most auspicious day, when Lord Swaminarayan manifested as a total supreme incarnation and by His life and works and philosophy He paved the way of the human beings for eternal peace and liberation and gave the boons, the free gifts by His infinite love and compassion to the entire humanity. Let us bow down to Him and to the lotus feet of His Saints, who have continued the same divine power-the Supramental power-by continuously maintaining the spiritual heirarchy. Let those boons or love gifts freely given to mankind for real happiness and bliss in this life be imbibed by us lovingly, sincerely and affectionately. We will be celebrating His 200th brithday in 1981 and now this is the begining from 25the March, 1980 onwards for the full one year celebrations. Let us first accept His love gifts and boons, which are as follows:

1. To all His disciples and the followers He guaranteed the basic needs of life.
2. That He will liberate the soul at the last moment on the point of death and give direct 'Darshan' or vision.
3. That all His folowers will be saved from universal hardship and devilish forces provided there is total surrender and devotion in Him above in adversity or prosperity.
4. That the transformatiom of the crude nature was attained easily in His company or in the association of His realised saints and Jivatma could become Brahma Swaroop for enjoying His powers, qualities, bliss-consciousness in this vary life and the life beyond.
5. He paved the way to final salvation on the basis of aspiration, true surrender, sincere prayer and love towards God and His saints.
6. The greatest boon given to humanity is the authenticity of the divine existence to remain constant and continuous in the form of personified Brahmaswaroop Realised Souls or Gunatit Saints or Visionary Jivanmuktas.
7. As the illuminated soul, others get spiritual vision and peace of mind-devoid of all desires and passions and single pointed devotion to the Lord by obeying the commands of Divinety Personified Spiritual Masters.
8. He vehemently dicarded blind faith and faulty surrender to an Avatar or Guru. The acceptance of Spiritual Master was based on revealed truth, natural aspirations and pure reason.

9. Manavdharma or Seva was considered as the essential quality of the Saints and creation of such spiritual atmosphere and activities for uplifting mankind from grievances, avidya and cycles of birth and death.

In the Spiritual history so far, say for the last 10,000 years, it is very difficult, rather impossible, to find out the working of such an Avatar or the Supreme ultimate reality manifesting in human form and working with us in an ordinary manner to relieve us from sorrows, conflicts and chaos and gave such boons freely to all those who may surrender Him unconditionally, even though he may be in any state of the mind with all the false and blemishes and powerful sins. But this is the unique redemptive process for the total change in life and it can make the human being the superman to enjoy the divine life, His powers and qualities, not after death but in this very life and in this world. There is no necessity at all to run away or escape from life and go to Himalayas or do rigorous exercises or peanances, but we should surrender Him-to the Almighty Divine Power and entity-in an unconditional manner as a child so that the Godfather can protect us an lift us from this wordly chaos, confusion and conflicts-the mind, the chitta and ego sense.

Who will purify us from this ignorance and avidya? That is the incarnation in human form with its continuity through realised soul to relieve and redeem us fully, totally and completely for enjoying the real meaning of life, purpose and goal for pertection. The body, the mind and the spirit will remain in full harmony and in tune with the eternal laws base on love, compassion, charity and equality. If we become Brahma-swaroop through the association of the Saints or Jivan muktas then God's power can also work through us. The fundamenta question is to understand ourselves and to awake within so that we could see His 'leela' and working for our betterment and perfection. And after awakening, if we could understand the complexities of life and the society, then we can attain that matuarity and become the master of the crude nature, known as Sattva, Rajas and Tamas-The inertia, the sensual activities and the ego sense of righteousness. But befofe the supramental being we are merely the spark or like Arjuna, But here is the opportunity given to us to transform and transcend the mind, the chitta and the ego sense into the divine personality like Arjuna.

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थः धनुर्धरः।

Where there is Arjuna and the path finder and the protector Lord Krishna or any realises soul or emancipated soul

before us, then the approach road is over and the high way or the king's path is experienced by us and we can flow like the river in our life to meet the sea in a joyous mood. We will be above all these conflicts and dualities and knowing perfectly ourselves-the innerselves-and the supreme being, who is the perfect master in this life, will give us or render us such illuminations within. So Jesus say-"The Heaven is within us". And now Lord Swaminarayan says that-"the heaven is outside also." Let us, therefore, compliment for Lord and our saints who are living symbols before us and contemplate with love and devotion and become the affectionate children in our innocent manner and remain open to Him so that He can take our possession or reside in us and expel the ages long ignorance, darkness and 'avidya.' may God bless us for that awareness and understanding,for revelation within us, for this sort of unique self-realisation and the development of divine qualities. And then we should share all these human activities together on the basis of friendliness, which is ultimately Godliness.

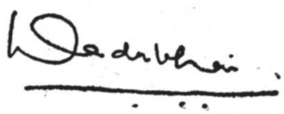

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	11.4.80	शुक्रवार	एकादशी, व्रत
2.	दि.	17.4.80	गुरुवार	अक्षय तृतीया (अखातीज)
3.	दि.	23.4.80	बुधवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
4.	दि.	26.4.80	शनिवार	मोहिनी भागवत एकादशी, व्रत

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-13, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 711838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110007